यज्ञोपवीततत्त्व, निर्माण तथा धारण विधिविमर्श

यज्ञोपवीत उदात्त भावनासम्बन्धी अंशसे व्याप्त एक ऐसा सूत्र है, जो हमारे जीवनको श्रुति-स्मृत्यनुमोदित मार्गपर चलाते हुए उन सम्पूर्ण उत्तरदायित्वों तथा कर्तव्योंका निर्वहन करते रहनेके लिये हमें ईश्वरद्वारा सौंपा गया है। इसीलिये शास्त्रकारोंने प्रत्येक यज्ञोपवीतधारीको यथासम्भव स्वयं सूत कातकर अपने हाथके परिमाणसे

इसका निर्माण करनेका विधान निर्धारित किया है। महर्षि कात्यायनद्वारा प्रतिपादित यज्ञोपवीतनिर्माणकी विधिका संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत है।'

अथातो यज्ञोपवीतनिर्माणप्रकारं वक्ष्यामः । ग्रामाबहिस्तीर्थे गोष्ठे वा गत्वाऽनध्याय- वर्जितपूर्वाह्ण कृतसंध्याष्टोत्तरशतं सहस्रं वा यथाशक्ति गायत्री जपित्वा ब्राह्मणेन तत्कन्यया सुभगया धर्मचारिण्या वा कृतं सूत्रमादाय भूरिति प्रथमां षण्णवती मिनोति, भुवरिति द्वितीयां स्वरिति तृतीयां मीत्वा, पृथक् पलाशपत्रे संस्थाप्य, आपो हि ष्ठेति तिसृभिः, शं नो देवीत्यनेन सावित्र्या चाभिषिच्य वामहस्ते कृत्वा त्रिः संताड्य व्याहृतिभिस्त्रिवणितं कृत्वा,

पुनस्ताभिस्त्रिगुणितं कृत्वा पुनस्त्रिवृतं कृत्वा प्रणवेन ग्रन्थिं कृत्वोङ्कारमग्निं नागान् सोमं पितॄन् प्रजापतिं वायुं सूर्य विश्वान् देवान् नवतन्तुषु क्रमेण विन्यस्य सम्पूजयेत्।

आदि शङ्कर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

देवस्येत्युपवीतमादाय, उद्वयं तमसस्परीत्यादित्याय दर्शयित्वा यज्ञोपवीतमित्यनेन धारयेदित्याह भगवान्कात्यायनः । (कात्यायनपरिशिष्ट)

यज्ञोपवीतकी निर्माण-विधि

महर्षि कात्यायन कहते हैं-

अब हम यज्ञोपवीतनिर्माणकी विधि कहते हैं। इसके निर्माणके लिये गाँवसे बाहर किसी तीर्थस्थान (मन्दिर) या गोशालामें जाकर अनध्यायरहित किसी भी दिवसमें संध्यावन्दनादि नित्यकर्म तथा एक सौ आठ या एक हजार आठ बार या यथाशक्ति गायत्रीमन्त्रका जप करके ऐसे सूतसे यज्ञोपवीत तैयार करे, जो स्वयं या किसी **ब्राह्मणद्वारा या ब्राह्मणकन्याद्वारा अथवा सधवा ब्राह्मणी** द्वारा कातकर तैयार किया गया हो।

इस सूतको **'भूः'**का उच्चारणकर ९६ अंगुल (चौए)-सहित

चारों अंगुलियोंके मूलपर लपेटे और उतारकर एक पलाशके पत्तेपर रख दे।

अब **'भुवः'** शब्दका उच्चारण करते हुए उसी क्रियाको और **'स्वः'** शब्दका उच्चारण करते हुए तीसरी बार क्रिया दुहराते हुए हाथमें लपेटकर ९६ चौएके परिमाणमें अन्य दो तार तैयारकर पलाशपर रखे।

अनन्तर **'आपो हि ष्ठा'**, **'शं नो देवी'** **'तत्सवितुः'** आदि तीन मन्त्रोंसे उन तीन तारोंको जलमें अच्छी तरह भिगोकर बाँये हाथमें लेकर तीन बार जोरसे आघात करे।

फिर तीन व्याहृतियोंसे उसे एक बट देकर एकरूप बना ले।

अब इन्हीं मन्त्रोंसे उसे त्रिगुणित करे और पुनः बटकर

एकरूप बना ले।

पुनः इसे त्रिगुणित करके प्रणवसे उसमें ब्रह्मग्रन्थि लगाये।

इसके नौ तन्तुओंमें ओङ्कार, अग्नि, अनन्त, चन्द्र, पितृगण, प्रजापति, वायु, सूर्य और सर्वदेवादि नौ देवताओंका क्रमशः आवाहन और स्थापन करे।

'उद्वयं तमसस्परि०' मन्त्रद्वारा उस सूत्रको सूर्यके सन्मुख करके **'यज्ञोपवीतम्०'** मन्त्र बोलते हुए धारण कर ले।

नवीन यज्ञोपवीतको अभिमन्त्रित करना-

श्रावणी उपाकर्मके दिन वर्षभरके लिये यज्ञोपवीतको अभिमन्त्रित कर रख लेना चाहिये। किसी कारणवश यज्ञोपवीत अभिमन्त्रित न हो तो नवीन यज्ञोपवीतको

निम्न रीतिसे अभिमन्त्रितकर धारण करना चाहिये।

सर्वप्रथम शुद्ध आसनपर पूर्वाभिमुख होकर बैठे और आचमन करनेके उपरान्त अपने सामने पलाशके पत्ते अथवा किसी पात्रपर नवीन यज्ञोपवीतको रखकर जलसे प्रक्षालित करे। तदुपरान्त निम्नलिखित एक-एक मन्त्र पढ़कर अक्षत-चावल या एक-एक फूल अथवा जलको यज्ञोपवीतपर छोड़ता जाय-

नव सूत्रों में

प्रथमतन्तौ ॐ ओङ्कारमावाहयामि ।

द्वितीयतन्तौ ॐ अग्निमावाहयामि।

तृतीयतन्तौ ॐ सर्पानावाहयामि ।

चतुर्थतन्तौ ॐ सोममावाहयामि ।

पञ्चमतन्तौ ॐ पितृनावाहयामि ।

षष्ठतन्तौ ॐ प्रजापतिमावाहयामि ।

सप्तमतन्तौ ॐ अनिलमावाहयामि ।

अष्टमतन्तौ ॐ सूर्यमावाहयामि ।

नवमतन्तौ ॐ विश्वान् देवानावाहयामि ।

ग्रंथि त्रय में

प्रथमग्रन्थौ ॐ ब्रह्मणे नमः, ब्रह्माणमावाहयामि ।

द्वितीयग्रन्थौ ॐ विष्णवे नमः, विष्णुमावाहयामि ।

तृतीयग्रन्थौ ॐ रुद्राय नमः, रुद्रमावाहयामि । इसकें बाद **'प्रणवाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः '**

मन्त्रसे **यथास्थानं न्यसामि'** कहकर उन-उन तन्तुओंमें न्यासकर चन्दन आदिसे पूजन करे। फिर यज्ञोपवीतको दस बार गायत्री मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे ।

इस प्रकार नूतन यज्ञोपवीतकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये । तब वह धारण करने योग्य हो जाता है। है। गायत्रीमन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित है । इसमें नौ देवताओंका वास है। अत: इसकी प्रतिष्ठाको बनाये रखनेके लिये जरूरी है कि यह सदा पवित्र रहे, जिससे इसके धारणकर्ताका बल, आयु

और तेज अक्षुण्ण बना रहे।

अभिमन्त्रित यज्ञोपवीतको धारण करना

स्नानादिकर एक आसनपर बैठकर नवीन यज्ञोपवीतमें हल्दी लगाकर संकल्पकर निम्नलिखित विनियोग पढ़कर जल गिराये । तदनन्तर नीचे दिया मन्त्र पढ़ते हुए एक यज्ञोपवीत धारण करे। आचमन करे और फिर दूसरा यज्ञोपवीत धारण करे। इस प्रकार एक- एक करके ही यज्ञोपवीत पहनना चाहिये-

विनियोग-

ॐ यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः लिङ्गोक्तादेवताः,त्रिष्टुप् छन्दः यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः ।

यज्ञोपवीत धारण करते हुए यह मन्त्र पढ़े-

ॐ यज्ञोपवीतं परम पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥
ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

पुराने (जीर्ण) यज्ञोपवीतको उतारना-

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर पुराने उपवीतको कण्ठी- जैसा बनाकर सिरपरसे पीठकी ओरसे अलग कर दे -

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया ।
जीर्णत्वात् त्वत्परित्यागो गच्छ सूत्र यथासुखम् ॥

त्याज्य यज्ञोपवीतको जलमें प्रवाहित कर दे अथवा किसी पवित्र स्थानपर छोड़ दे। इसके उपरान्त यथाशक्ति गायत्रीमन्त्रका जप करे अथवा कम- से-कम दस

गायत्रीमन्त्रका जप करे और 'ॐ तत्सत् श्रीब्रह्मार्पणमस्तु' कहते हुए हाथ जोड़कर भगवान् का स्मरण करे।

शौचादिके समय यज्ञोपवीतकी स्थिति-

गृह्यसूत्रकारोंने उपवीतको शौच, लघुशङ्काके समय दाहिने कानमें लपेटनेका विधान किया है, यथा-

१-'निवीती दक्षिणकर्णे यज्ञोपवीतं कृत्वा...... पुरीषे विसृजेत्'। (वैखानसधर्मप्रश्न २।९।१ शौचविधि)।

२-'यज्ञोपवीतं शिरसि दक्षिणकर्णे वा कृत्वा।(बोधायनगृह्यमशेषसूत्र ४ ६।१)।

३- ....कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः । कुर्यान्मूत्पुरीषे च......"

(याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय)

४-'कर्णस्थब्रह्मसूत्रो मूत्रपुरीषं विसृजति' (आग्निवेश्यगृह्यसूत्र २। ६) इत्यादि।

मल-मूत्रका त्याग करते समय दाहिने कानमें सूत्र लपेटने के रहस्यके पीछे अनेक कारण दिये गये हैं। सिर मानव-शरीरमें ज्ञानका केन्द्र होता है तथा दाहिने कानमें रुद्र, आदित्य, वसु आदि देवताओंका वास बताया गया है, अत: इस क्षेत्रको अपवित्रतासे मुक्त रखनेहेतु यज्ञोपवीतको कानपर रखनेका विधान किया गया है, यथा-

आदित्या वसवो रुद्रा वायुरग्निश्च धर्मराट् ।

विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ॥

पुरुष नाभिके ऊपर पवित्र है, नाभिके नीचेका भाग मलमूत्र- धारक होनेसे विशेषत: शौचके समय अपवित्र होता है । इसीलिये उस समय पवित्र यज्ञोपवीतको वहाँ न रखकर ऊर्ध्वभाग- कर्णप्रदेशमें रखा जाता है।

शरीरविज्ञानके अनुसार यदि मानव-शरीरका अवलोकन

करें तो मध्यमें वीर्यकोष है। यहाँसे निकलनेवाली रक्तवाहिनी नाड़ी दाहिने कानसे होते हुए शरीरके मल-मूत्रद्वारतक जाती है। प्रायः लघुशङ्का या शौचके समय जोर लगानेसे वीर्य अज्ञात रूपसे स्खलित होने लगता है। यदि इसपर ध्यान न रखा जाय तो यह शरीरको भयङ्कर रोगोंसे ग्रस्त कर सकता है। अत: महर्षियोंने इस प्रवाहको रोकनेके लिये जहाँ एक ओर कर्णवेध-संस्कारमें कर्णच्छेदनकी रीति प्रचलित की, वहीं यज्ञोपवीतद्वारा इस नाडीको बाँधकर वीर्यरक्षा करनेका प्राविधान भी किया और उन्होंने इस नियमको बनाया । यह रक्तचापपर नियन्त्रण रखता है और हृदयको मज़बूत बनाता है।

यज्ञोपवीतकी तीन स्थितियाँ

यज्ञोपवीत तीन रूपोंमें धारण किया जाता है और उन तीन स्थितियोंके तीन नाम हैं, जो इस प्रकार हैं-१-उपवीती (सव्य), २- निवीती (कण्ठीकी तरह-मालाकी तरह), ३ - प्राचीनावीती (अपसव्य)।

क-उपवीती-

यज्ञोपवीत (जनेऊ) जब बाँयें कन्धेसे दाहिने हाथके नीचे दाहिनी तरफ होता है तो इसे उपवीती या सव्यावस्थाकी स्थिति कहते हैं। सामान्य स्थितिमें जनेऊ ऐसे ही पहना हुआ रहता है और सभी मांगलिक एवं देवकार्य भी सव्यावस्थामें ही होते हैं ।

ख-निवीती-

जनेऊको गलेमें कण्ठीकी तरह (मालाकी भाँति) धारण करनेको निवीती-अवस्था कहा जाता है। तर्पणमें जब सनकादि ऋषियोंको जलांजलि दी जाती है तो निवीती होकर ही दी जाती है । इसी जनेऊको जब आगे न करके पीठकी ओर माला कराकर पहना जाता है, वह भी निवीती-अवस्था कहलाती है, ऐसा ग्राम्य धर्म (मैथुनकर्म) -के समय करनेका विधान है ।

ग-प्राचीनावीती-

यज्ञोपवीत (जनेऊ) जब दाहिने कंधेसे बायें हाथके नीचे बायीं ओर किया जाता है तो इसे प्राचीनावीती या अपसव्यावस्था कहते हैं।

सम्पूर्ण पितृकर्म- श्राद्ध- तर्पण आदि अपसव्य होकर ही करनेकी विधि है।

कन्याओंका उपनयन-संस्कार नहीं होता-

स्त्रियोंका विवाह- संस्कार ही द्विजत्व- सम्पादक उपनयन है। वैवाहिक वरप्रदत्त उपवस्त्रको ही विवाहतक यज्ञोपवीतकी तरह लपेटना कन्याओंका उपनयन-सूत्रधारण होता है । पुरुषके लिये शास्त्रोंमें प्रयुक्त 'संस्कार' शब्द जैसे उपनयनवाचक है, वैसे ही स्त्रीके लिये शास्त्रवचनोंमें आया 'संस्कार' शब्द उसके विवाहका बोधन कराता है। 'असंस्कृत:' यह पुंलिंग शब्द 'अनुपरनीतः ' इस अर्थमें आता है, 'असंस्कृता' यह स्त्रीलिंग शब्द

'अविवाहिता' अर्थमें आता है। अत: विवाहसे भिन्न स्त्रियोंका कोई उपनयन-संस्कार पृथक् नहीं होता। इसीलिये पुरुषको विवाहके पूर्व ही यज्ञोपवीत-संस्कार करना चाहिये, जिससे पत्नी भी उपवीती हो जाय ।

संस्कारोंके अनुपालनमें शुचिता और पवित्रताका विशेष ध्यान रखना होता है। स्त्रीके शरीरका निर्माण इस तरह हुआ है कि उसे मासमें कुछ दिन (रजोधर्मके समय) अपवित्र दशामें रहना पड़ता है । इसी तरह प्रसवकालमें भी वह अपवित्र दशामें रहनेके लिये बाध्य होती है। पुरुषके समान स्त्री ब्रह्मचर्यधर्मका पालन (रजस्वला होनेपर) करनेयोग्य नहीं होती। अत: उनके लिये उपनयनका विधान नहीं है ।

मनुजीने बताया है कि स्त्रियोंका विवाह- संस्कार ही उनके यज्ञोपवीत संस्कारके समान है-'

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।'

(मनुस्मृति २| ६७)

यज्ञोपवीत धारण विचार

स्नान में, दान में, जप में, होमकर्म में, देवता तथा पितरों के कर्म (श्रादतर्पण) में आसुरी कक्षा-कच्छे या उत्तरीय (दुपट्टे) के दोनों छोर को पीठ के पीछे करके बाँधना वर्जित है ।

आदि शङ्कर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

उपर्युक्त कार्याविधि के बाद अपनी रुचि के अनुसार उत्तरीय को धारण करे, ऐसा दान हेमाद्रि ग्रन्थ में गौतम ऋषि का कथन है-

स्नाने दाने जपे होमे दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।

बध्नीयान्नासुरीं कक्षां शेषकाले यथारुचिः ।।

इसी आसुरी कक्षा के सन्दर्भ में वहाँ (दान हेमाद्रि) ग्रन्थ में याज्ञवल्क्य का कथन है कि अंग पर धारण किये जाने वस्त्र से बाहर कक्षा-वस्त्र के दो छोर (प्रान्तों) को नहीं बाँधना चाहिए । यह वस्त्र के दोनों प्रान्तों को बाँधना ही आसुरी कक्षा कहलाती है। विद्वानों को धर्मकर्म में आसुरी का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए-

परिधानाद्बहिःकक्षा निबद्धा चासुरी मता ।

धर्मकर्मणि विद्वद्भिर्वर्जनीया प्रयत्नतः।

(याज्ञवल्क्य)

उपवीतित्वं बद्धशिखित्वं चाधिकारी विशेषणम् ।

कर्म में अधिकार प्राप्त करने के लिए यज्ञपवीत धारण एवं शिखाबन्धन आवश्यक है, जैसा कि "छान्दोग्यपरिशिष्ट", ग्रन्थ में महर्षि कात्यायन का वचन है-

सदोपवीतिनाभाव्यं सदाबद्धशिखेन च।

विशिखो व्युपवीतिश्च यत्करोति न तत्कृतम् ।।

(छान्दोग्यपरिशिष्ट, कात्यायन)

द्विज को सर्वदा यज्ञोपवीतधारण एवं शिखाबन्धन करना चाहिए। शिखा एवं यज्ञोपवीत रहित द्विज जोभी धर्मकर्मादि अनुष्ठान करता है वह सब न किये के बराबर होता है अर्थात् निरर्थक ही होता है।

जैसे स्रुवादि यज्ञपात्र में खदिर (खैरवृक्ष) एवं पञ्चामृत, पंचगव्य (गोमूत्र, गोबर, दूध, दही एवं घृत) में दही ये दोनों पदार्थ क्रतु-यज्ञ एवं पुरुषार्थ दोनों से सम्बन्धित हैं, उसी प्रकार यज्ञोपवीत एवं शिखा, दोनों पदार्थ कर्म एवं पुरुषार्थ

दोनों के प्रयोजन हेतु हैं। अर्थात् धर्मानुष्ठानादि के अतिरिक्त हमेशा यज्ञोपवीत एवं शिखा, दोनों को धारण करना द्विज के लिए आवश्यक है। यही पुरुषार्थ है-

दधिखादिरादिवत् अनेन हि उपवीतित्वस्य बद्धशिखित्वस्य च क्रतुपुरुषोभयार्थत्वमवगम्यते ।

आशय यह है कि यज्ञोपवीत एवं शिखा के बिना यदि धर्म-कर्म करता है तो कर्म में विगुणता (हीनता) होती है तथा सर्वदा शिखा न होने से भी पुरुष को प्रायश्चित होता है । इसी तरह धर्मकर्मादि अनुष्ठान के सिवाय यदि बिना यज्ञोपवित के भोजन करने एवं मल-मूत्र का त्याग करने में भी प्रायश्चित होता है। यदि प्रायश्चित नहीं करता है, तो शिष्ट विगर्हणा अर्थात् शिष्टपुरुषों के द्वारा निन्दा होती है, इसी प्रकार पुरुषार्थहीन पुरुष होता है। इस प्रकार दो प्रायश्चित करने होते हैं। एक कर्म सम्बन्धी विगुणता के लिए एवं दूसरा शिष्ट विगर्हणा न होने के लिए प्रायश्चित्त ।

यज्ञोपवीत के बिना भोजनादि कार्य करने का प्रायश्चित

यज्ञोपवीत के बिना भोजनादि कार्य करने से प्रायश्चित को ने कहा है कि जो द्विज यज्ञोपवीत के बिना खाता है तथा मल-मूत्र का त्याग करता है, वह आठ हजार गायत्री का जप एवं प्राणायाम करने पर शुद्ध होता है-

ब्रह्मसूत्रं विना भुंक्ते विष्णमूत्रं कुरुते तथा ।

गायत्र्यष्टसहस्त्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति ।।

मरीचि ऋषि

बिना यज्ञोपवीत के द्विज यदि पानी (पेय पदार्थ) का पान करता है, लघुशंका करता है एवं कुछ खाता है तो उसको प्रायश्चित के निमित्त क्रमशः तीन एवं छह प्राणायाम करने चाहिए अर्थात् बिना यज्ञोपवीत के पीने में, मूत्रत्याग में एवं खाने में क्रमश: ३ बार ६ बार एवं ९ बार प्राणायाम करना चाहिए ।

पिबतो मेहतश्चापि भुंजतोऽनुपवीतिनः ।

प्राणायाम त्रिकं षट्कं नवकं च त्रितयं क्रमात् ।।

आदि शङ्कर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

मनुः

(रुद्रकल्पद्रुम का यह मनु उद्धरण मनुस्मृति में नहीं मिला)

उपर्युक्त प्राणायाम रूप प्रायश्चित अपनी शक्ति के अनुसार कम या अधिक करे, इसमें कोई विरोध नहीं है । उपर्युक्त श्लोक में, भुंजत, अर्थात् भोजन एवं अन्य कर्म को भी बिना यज्ञोपवीत के यदि करता है तो उससे भी प्रायश्चित्त होगा ॥

यज्ञोपवीत की त्रिविध स्थिति

आचार्य गोभिल ने आचारादर्श, ग्रन्थ **"दक्षिणं बाहुमुधृत्य"** इत्यादि पंक्ति के द्वारा यज्ञोपवीत – (सव्य)- प्राचीनावीती (अपसव्य) एवं निवीति (माला की तरह कंठ में यज्ञोपवीत को धारण करना) कहा है।

सव्य अथवा उपवीती

महर्षि भारद्वाज ने हेमाद्रि निबन्ध, ग्रन्थ में उपर्युक्त लक्षण का श्लोकबद्ध प्रमाण प्रस्तुत किया है-

दक्षिणं बाहुमुधृत्य वामस्कन्धे निवेशितम् ।

यज्ञोपवीतमित्युक्तं देवकार्येषु शस्यते।।

 दाहिनी भुजा (बाह) को उठाकर बाये कन्धे पर रखी गयी जनेऊ को यज्ञोपवीत (सव्य) कहा जाता है । यह देवकार्य के लिए प्रशस्त है ॥

निवीती

जो जनेऊ माला की तरह कंठ में लंबित (पहनी हुई) होती है, वह निवीती, कहलाती है। ऋषियों के श्राद्ध या तर्पण में निवीती होती है-

कंठावलम्बितं चैव ब्रह्मसूत्रं यदा भवेत् ।

तन्निवीतमितिख्यातं शस्तं कर्मणि मानुषे ।।

प्राचीनतावीती अथवा अपसव्य

बायीं भुजा (बाँह) को उपर उठार दाहिने कंधे पर यज्ञोपवीत को रखने पर प्राचीनावीती (अपसव्य) कही जाती है। यह प्राचीनावीती या अपसव्य केवल पितरों के

श्राद्धादि कर्मों में ही विहित है-

उत्क्षिप्ते वामबाहौ तु दक्षिणस्कन्धमाश्रितम् ।
प्राचीनावीतमित्युक्तं तत्पित्र्येष्वेव कर्मसु ।।

बायें कन्धे पर रख कर दाहिने हाथ की काँख के नीचे धारण की गई जनेऊ यज्ञोपवीत है। यह देवकार्य में विहित है। इसी प्रकार दाहिने कन्धे एवं वाम कक्ष के नीचे धारण की गई जनेऊ, प्राचीनावीती (अपसव्य) है। कंठ में माला की तरह दोहरी धारण जनेऊ नीवीती कही जाती है। स्त्री संयोग में कंठ के पीछे पीठ पर लटकाई जाती है। ऐसा निगम परिशिष्ट ग्रन्थ में कहा है-

वामस्कंधकक्षयोर्यज्ञोपवीतं दैवे । प्राचीनावीतमितरया पितृयज्ञे ताभ्यां द्विकंठासक्तं उत्सर्गनीवीतम् । पृष्ठतो देशावलम्बि ग्राम्यधर्मेष्विति ।।

आचारादर्श

जहाँ नीवीती एवं प्राचीनावीती की विधि नहीं सुनी जाती है, वहाँ देवकार्य उपलक्षण समझना चाहिए । आचारादर्श

ग्रन्थ के अनुसार पितृकार्य, मनुष्य - ऋषिकार्य के अतिरिक्त प्राय: सब देव सम्बन्धी कार्य ही समझना चाहिए।

द्विविध यज्ञोपवीत

पारिजातकल्पतरु में यज्ञोपवीत दो प्रकार का होता है नौ सूत्रवाला तथा सामान्य तीन सूत्र वाला । द्विजातिरिक्त शूद्रादि के लिए नौ सूत्र वाला नहीं होना चाहिए ऐसा मिताक्षारा में लिखा है । सामान्य त्रिसूत्र को शूद्र भी धारण कर सकता है। शूद्र को अदृष्ट कर्म के लिए उपवीत धारण करना चाहिए । पारिजात कल्पतरु ग्रन्थ के अनुसार शूद्रादि को उपवीत संभव न हो तो उसकी पूर्ति हेतु उत्तरीय दुपट्टा आदि अदृष्टार्थ कर्म में धारण करना चाहिए-

उपवीतं द्विधा - नवसूत्रं संस्थानविशेषश्च । तत्राद्यं शूद्रस्य नेत्युक्तं मिताक्षरायाम् । अन्त्यं शूद्रस्यापि भवति । उपवीतिना कर्म कर्त्तव्यमित्यस्य सर्वकर्मशेषत्वेन शूद्रस्याप्यदृष्टार्थे कर्मण्युपवीतित्वाश्यं भावात् । उपवीताद्युत्तरीयवस्त्रेणापीति पारिजातकल्पतरुः ।

जो कि श्री शंकराचार्य जी ने श्री विष्णुसहसस्र भाष्य में यह लिखा कि शूद्र को न तो शिखा न उपवीती जनेऊन संस्कृत वाणी का उच्चारण करना चाहिए, वह असत् शूद्र या ब्राह्मण होते हुए भी ब्रह्मकर्म रहित व्यक्ति से या नौ सूत्र रहित अर्थात् यज्ञोपवीत रहित ब्राह्मण परक वचन समझना चाहिए-

यत्तु "न शिखिनोपवीती स्यान्नोच्चरेत्संस्कृतां गिरम्" इति श्रीशंकराचार्यकृत श्रीविष्णुसहस्रभाष्ये । आद्यं तदसच्छूद्रपरकर्मकालपरं नवसूत्रपरं वा ।

रुद्रकल्पद्रुम

कपास (रूई) अतसी-अलसी, गाय के बाल, सन या पटसन, वृक्ष की छाल एवं मुंज आदि तृण से बने हुए

उपवीत- जनेऊ को द्विज हमेशा धारण करें। ऐसा हरिहर आचार्य के भाष्य में देवल ऋषि का प्रमाण है-

कार्पास क्षौमगोवालशाणवल्कतृणादिकम् ।

सदा संभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ।।

देवल हरिहरभाष्य

यज्ञोपवीत निर्मिति आधार द्रव्य

मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण के लिए कपास (रूई) द्वारा निर्मित, ऊपर की ओर त्रिगुणित सूत्र दक्षिणावर्त यज्ञोपवीत होता है । सन सूत्र के द्वारा उपर्युक्त प्रकार से बना क्षत्रिय के लिए तथा मेष (भेडा) के बालों से बना हुआ यज्ञोपवीत वैश्य के लिए होता है-

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ।

शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविक सूत्रकम् ।।

मनु.२१/४४

छन्दोगपरिशिष्ट नामक ग्रन्थ में कात्यायन ऋषि के

प्रमाणनुसार त्रिगुणित सूत्र ऊपर की ओर से दक्षिणावर्त तथा तीन तन्तु (सूत्र) नीचे की ओर आवर्तित कर त्रिवृत या त्रिगुणित करके उसमें एक ग्रन्थि-गाँठ लगाने पर उपवीत बनता है । इस प्रकार से निर्मित उपवीत ब्राह्मण को धारण करना चाहिए-

त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधो वृतम् ।

त्रिवृतं चोपवीतं स्यात् तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ।।

छन्दोगपरिशिष्ट

संग्रहकार ने ऊर्ध्ववृत का लक्षण बताया है -

करेण दक्षिणोर्ध्वगतेन त्रिगुणीकृतम् ।

वलितं मानवैः सूत्रं शास्त्रे ऊर्ध्ववृतं स्मृतम् ।।

ऊपर की ओर स्थित हाथ से घुमाया हुआ या लपेटा हुआ त्रिगुणित मानव निर्मित सूत्र को ऊर्ध्ववृत कहा जाता है।

यज्ञोपवीत-रचनाप्रकार

यज्ञोपवीत की रचना का प्रकार स्मृत्यर्थसार, एवं हरिहरभाष्य में निम्नांकित रूप में है– पवित्र स्थान में तर्क -तकली से कते हुए छियाँनवे (९६) सूत्र को यत्नपूर्वक सावधानी से सटी हुई-मिली हुई अंगुलियों के शुद्ध मूल भाग में लपेटकर उस सूत्र को तिगुना करने के बाद ॐ आपोहिष्ठा' इत्यादि तीन मन्त्रों से अच्छी तरह त्रिगुणित सूत्र का प्रक्षालन कर ऊपर एवं नीचे की ओर अप्रदक्षिणा (उलटा) एवं प्रदक्षिणा (सीधा) क्रम से आवृत्तकर घुमाकर अर्थात् नव-नौ-तन्तुओं को त्रिंगुणित आवर्तित करने पर समान रूप से नवसूत्रात्मक यज्ञों पवीत तैयार होता है। पुनः यज्ञोपवीत का प्रक्षालन कर तन्तु एवं ग्रन्थि में देवताओ का आवाहन करे-

शुचौदेशे शुचौ सूत्रं संहतांगलिमूलके ।

आवेष्ट्य षण्णूनवत्यातत्रिगुणीकृत्य यत्नतः ।।

अब्लिंगैस्त्रिभिः सम्यक्प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं च तत् ।

अप्रदक्षिणमावृत्तं सावित्र्या त्रिगुणी कृतम् ।

आदि शङ्कर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

अध: प्रदक्षिणावृत्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् ।।

स्मृत्यर्थसार हरिहरभाष्य

यज्ञोपवीत के नवतन्तु देवता

प्रथम तन्तु में ॐ कार (१) द्वितीय में अग्नि (२) तृतीय में नाग (सर्प-३) चतुर्थ में सोम (सोम-चन्द्र-४) पंचम में पितृदेव (५) छठवें में प्रजापति (६) सातवे में वायु (७) आठवें में सूर्य (८) एवं नवम तन्तु में विश्वेदेवाः (सभीदेव-९) ये क्रमशः नौ तन्तुओं में नौ देवता हैं-

ॐ कारश्चाग्निको नागो सोमः पितृप्रजापतिः ।

वायुः सूर्यः सर्वदेवा इत्याहुस्तन्तु देवताः ।।

इन नौ तन्तुओं में उपर्युक्त नौ देवताओं का आवाहन कर इन तन्तुओं को तीन-तीन त्रिगुणित या तीन बार आवर्तित कर मजबूत बाँधकर तीन ग्रन्थि लगाले और ग्रन्थि में ब्रह्मा, विष्णु एवं मेहेश्वर (रुद्र) का आवाहन कर **यज्ञोपवीतं परमं पवित्रमिति-** इस मन्त्र में यज्ञोपवीत को धारण करना

चाहिए ॥

देह में यज्ञोपवीत का धारणीय परिमाण

पीठ पीछे मेरुदण्ड (रीढ) पर्यन्त एवं नाभि के सामने कटि पर्यन्त उपवीत को धारण करना चाहिए । उपर्युक्त प्रमाण से न अधिक लम्बा तथा न अधिक ऊँचा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए-

पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् ।

तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलंबं न चोच्छ्रितम् ।।

छन्दोगपरिशिष्ट- कात्यायन

यज्ञोपवीत को कण्ठ से निकालने का निषेध तथा उसका प्रक्षालन करने के लिए शाखा विशेष के लिए अपवाद

यज्ञोपवीत को कण्ठ से निकालने का निषेध तथा उसका प्रक्षालन करने के लिए शाखा विशेष के लिए अपवाद को

भृगु महर्षि ने निम्नांकित प्रमाण से कहा है कि मन्त्रों के द्वारा पवित्र कर शरीर पर जो यज्ञोपवीत धारण किया गया है, उस यज्ञोपवीत को अपना श्रेय-कल्याण चाहने वाला व्यक्ति शरीर से कभी भी न निकाले-

मन्त्रपूतं स्थितं काये यस्य यज्ञोपवीतकम् ।

नोद्धरेच्च ततः प्राज्ञो य इच्छेच्छ्रेयमात्मनः ।।

यज्ञोपवीत को एक बार भी गले से निकालने पर द्विज प्रायश्चित्ती (प्रायाश्चित वाला) होता है-

सकृदुत्तारणात्तस्य प्रायश्चित्ती भवेद्विजः ।

जहाँ पर प्रायश्चित के विषय में विशेष विधि नहीं कही गई हो, वहाँ भूर्भुवः स्वः इन तीन व्याहृतियों से घृत की कम से कम २८ आहुतियाँ देनी चाहिए-

प्रायश्चित्त विशेषस्य यत्र नोक्तो भवेद्विधिः ।

होतव्याज्याहुतिस्तत्र भूर्भुस्वरितीति च

तैत्तिरीय, काण्व, चरक एवं वाजसनेय माध्यन्दिन शाखा

वाले द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) यज्ञोपवीत को कंण्ठ से उत्तार कर प्रक्षालन करें तो इसमें कोई प्रायश्चित नहीं है-

तैत्तिरीया: कठा: काण्वाश्चरका वाजसनेयिनः ।

कंठादुत्तार्य सूत्रं तु कुर्युर्वे क्षालनं द्विजाः ।।

ऋग्वेदी, सामवेदी एवं अन्य जो यजुर्वेद की शाखा वाले हैं, वे यदि कंठ से यज्ञोपवीत को उतार कर प्रक्षालन करें तो उनको यज्ञोपवीत का पुनः संस्कार करना चाहिए । पुनः संस्कार का मतलब यह है कि पुन: दूसरे यज्ञोपवीत का प्रक्षालन, अभिमन्त्रण, तन्तु देवता एवं ग्रन्थि देवता का आवाहन कर **"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्."** इत्यादि मन्त्र से यज्ञोपवीत को धारण करना चाहिए-

बह्वचाः सामगाश्चैव ये चान्ये यजुः शाखिनः ।

कण्ठादुत्तीर्य सूत्रं तु पुनरर्हन्ति संस्क्रियाम् ।।

यज्ञोपवीत कण्ठ से उतारने की विशेष स्थिति

मैल छुडाने में, स्नान में और उबटन मलने में यज्ञोपवीत को गले से अलग कर सकता है। इसके अतिरिक्त यदि गले से यज्ञोपवीत को अलग करता है तो वह नरक में जाने का काम करता है-

मलापकर्षणे स्नाने गात्राभ्यंगे तथैव च ।

उपवीतं पृथक् कुर्यात् अन्यत्र नरकं व्रजेत् ।।

उबटन या मालिश करने में समुद्रस्नान में, मृतक माता-पिता की तिथि में ही द्विज यज्ञोपवीत को कंण्ठ से उतार कर प्रक्षालन करें । अर्थात् उपर्युक्त स्थिति में ही द्विज यज्ञोपवीत को कंण्ठ से निकाल कर उसका प्रक्षालन कर सकता है, अन्य समय में नहीं। उपर्युक्त कथन से नित्य स्नान विधि में यज्ञोपवीत का प्रक्षालन विषयक गोपीनाथ आचार्यादि शैव परम्परा वालों का वक्तव्य निरस्त हो जाता है-

अभ्यंगे चोदधिस्नाने मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।

कंठादुत्तार्य सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः।।

यज्ञोपवीत के अभाव में वस्त्र से त्रिगुणित सूत्र से, कुशा से, मुंज तृण से, गायके. बाल से या मौली से यज्ञोपवीत का निर्माण करना चाहिए-

("वाससा यज्ञोपवीतानि कुर्यात्तदभावे त्रिवृता सूत्रेण कुश मुञ्ज वाल प्रतिसररज्जुभिर्वेति । वालोऽत्र गोवालः । उक्तदेवलवचनात्- रुद्रकल्पद्रुम**)**

यज्ञोपवीत संख्या

ऐसा आचार्य देवल का कथन है। आचार्य नारायण की वृत्ति में महर्षि वसिष्ठ के प्रमाण का उल्लेख निम्नांकित है-

स्नातकानां हि नित्यं स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम् ।

यज्ञोपवीते च यष्टिः स्यात् सोदकश्चकमण्डलुः ।।

नारायण वृत्ति में वसिष्ठ वचन

स्नातक को शरीर के भीतर लगोटी आदि अन्तर्वस्त्र पहन कर ऊपर से दूसरा वस्त्र पहनना चाहिए, जिसमें मुक्तकच्छ न हो । दो यज्ञोपवीत, दण्ड तथा जलयुक्त कमण्डल धारण करना चाहिए। ऐसा नारायण वृत्ति में वसिष्ठ का वचन है ॥

ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा ।

तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे दिष्यते ।।

स्मृत्यर्थसार तथा हरिहरभाष्य

पी.धा. - ब्रह्मचारी को एक, स्नातक को दो या बहुत सी यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए । यदि उत्तरीय वस्त्र न हो तो उसकी पूर्ति हेतु तृतीय यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए।

ऊपर श्लोक में जो उत्तरीय वस्त्र के अभाव में तीसरे यज्ञोपवीत को धारण करने को कहा है, वह कर्म के अंग रूप में समझना चाहिए । अर्थात् उत्तरीयाभाव में यदि यज्ञोपवीत को धारण नहीं करेगा तो कर्म अधूरा होगा। कर्म में वैगुण्य होने से कर्मजन्य फल की प्राप्ति नहीं होगी।

श्लोक में जो बहूनि अर्थात् बहुत यज्ञोपवीतधारण की बात है, वह कामना परक है । जैसा कि आचार्य देवल ने कहा है कि **बहूनिचकाम्यपरकानि** अर्थात् धर्म कर्म करने वाले द्विज को यदि दीर्घायु की कामना हो तो बहुतसे यज्ञोपवीत को धारण करना चाहिए ।

स्मृत्यर्थसार, नामक ग्रन्थ में विश्वामित्र ऋषि के कथनानुसार श्रौत (श्रुति-वेदप्रतिपादित) कर्म में दो यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए तथा उत्तरीय वस्त्र के अभाव में तृतीय यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए -

यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।

तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ।।

स्मृत्यर्थसार में विश्वामित्र वचन

यद्यपि तृतीय यज्ञोपवीत को उत्तरीय वस्त्र के अभाव में धारण करने के लिए उत्तरीय वस्त्र को धारण करने वाले मन्त्र **(ॐ यशसा मा.)** से उस तृतीय यज्ञोपवीत को धारण करना प्रतीत होता है तथापि मन्त्र के द्वारा स्मरण किये गये कर्म को करने का विधान **(मन्त्रणैव स्मृतं कर्म कर्त्तव्यम्) अनुष्ठेय पदार्थ स्मारकत्वं मन्त्रत्वमिति-**

ऋग्वेदभाष्यभूमिकायां सायणाचार्येणोक्तत्वादिति प्रमाणमधिकृत्येर्थः) होने से प्रकृत विषय में तृतीय यज्ञोपवीत धारण सम्बन्धी कर्म होने से यज्ञोपवीत धारण करने वाला मन्त्र ही यज्ञोपवीत धारण सम्बन्धी कर्म का स्मरण कराने के कारण **"यज्ञोपवीतं परमंपवित्रम्"** इत्यादि मन्त्र से ही तृतीय यज्ञोपवीत को धारण करना युक्ति युक्त है ।

तृतीय यज्ञोपवीत उत्तरीय वस्त्र के लिए है- ऐसा कहने से ही विकल्प के सिद्ध होने पर "वस्त्राभाव इत्युक्तिरुत्तरीयाभाव एवानुकल्पार्था" । वस्त्र के अभाव में ऐसी उक्ति या ऐसा कहना-उत्तरीय वस्त्र के अभाव का ही विकल्प है। अतः इस कारण से तृतीय यज्ञोपवीत उत्तरीय वस्त्र के विकल्प में धारण करने पर भी यदि उत्तरीय वस्त्र का लाभ हो जाय अर्थात् उत्तरीय वस्त्र मिलजाय तो, उसको भी धारण कर लेना चाहिए, ऐसा जो कुछ लोग कहते हैं, यह ठीक नहीं है ऐसा अन्य आचार्यों का कहना है। क्योंकि एक विकल्प या (गौण) होने पर गौण एवं प्रधान का विरोध हो जायगा। इस कारण से उत्तरीय का लाभ होने पर भी उसको धारण न करे ।

तृतीयमुत्तरीयार्थे इत्येतावतैवानुकल्पत्वे सिद्धे वस्त्राभाव इत्युक्ति उत्तरीयाभाव एवानु कल्पत्वार्था । तेन उत्तरीये धृते उत्तरीय लाभे तदपि धार्यमिति केचित् । तन्नेत्यन्ये । एकस्यैव कदाचित् अनुकल्पत्वे प्राधान्ये च विरोधात् ।

वृद्ध-प्राचीन आचार्यों का कहना है कि उत्तरीय वस्त्र का प्रयोजन सभी कर्म के लिए होने के कारण यदि प्रत्येक कर्म उसके बिना अनुपपन्न (सम्पन्न नहीं) होता है तो यज्ञोपवीत की तरह एक ही बार हमेशा के लिए उसको धारण कर लेना चाहिए । इसी प्रकार तृतीय उपवीत को भी एक बार हमेशा के लिए धारण करना चाहिए-

वृद्धास्त्वाहुः उत्तरीयस्य सर्वकर्मार्थत्वात्प्रतिकर्म धारणानुपपत्तेस्तदुपवीतवत्सर्वार्थं सकृदेव धार्यम् । एवं तृतीयोपवीतमपि ।

इस प्रकार तृतीय यज्ञोपवीत को अंगीकार करने से किसी प्रकार के कर्म विशेष का आरम्भ करने के बाद मुख्य उत्तरीय वस्त्र का लाभ होने पर भी जैमिनीय न्यायमाला विस्तर के छठवें अध्याय के न्यायानुसार उस उत्तरीय को

ग्रहण नहीं करना चाहिए-

तदंगीकारेण कर्म विशेषारम्भोत्तरं मुख्योत्तरीय लाभेऽपि नतद्ग्रहणं षाष्ठन्यायात् ।

कर्मारम्भ के समय तो तृतीय यज्ञोपवीत के होते हुए भी न्यायमाला के षष्ठाध्यायोक्त नियमानुसार उत्तरीय वस्त्र के उपलब्ध होने पर उसको धारण करना चाहिए और ऐसी स्थिति में तृतीय यज्ञोपवीत के त्याग की आपत्ति नहीं है। अर्थात् तृतीय यज्ञोपवीत का त्यागना आवश्यक नहीं है। चूँकि तृतीय यज्ञोपवीत को तो सभी कार्य के लिए धारण करने के कारण से उसके त्याग की आपत्ति है ही नहीं। उत्तरीय वस्त्र सर्वदा धारण किये रहे, ऐसा संभव नहीं है। यही हम युक्ति युक्त देख रहे हैं, और शिष्टाचार भी ऐसा ही है-

कर्मारम्भे तु तृतीये सत्वेऽपि तद्ग्रहणं षाष्ठन्यायात् । नच तृतीयत्यागापत्तिः । सर्वार्थत्वे धृतत्वात् उत्तरीयस्य च सर्वदा सत्वासम्भवादितियुक्तमुत्पश्यामः । शिष्टाचारोऽप्येवम् ।

मदनपारिजात, नामक ग्रन्थ में तो ऐसा पाठ है कि तृतीय यज्ञोपवीत उत्तरीय वस्त्र के लिए धारण किया जाता है-

तृतीयमुत्तरीयार्थे एकं तु प्रथमाश्रममितिमदनपारिजाते पाठः।

प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम में एक यज्ञोपवीत होने के कारण अधोवस्त्र के उत्तरभाग को उत्तरीयवस्त्र के स्थान (कंधे) पर धारण करना चाहिए।

उत्तरीयवस्त्र के अभाव में तो, पारस्कारगृह्यसूत्र में स्पष्ट कहा है कि यदि एव वस्त्र हो तो उसके उत्तरवर्ग (भाग) से उत्तमांग का आच्छादन करना चाहिए। इस प्रकार एक वस्त्र होने से उसके उत्तर भाग का उत्तरीय वस्त्र के रूप में ग्रहण करने के कारण **"यशसा मा."** इस उत्तरीय धारण मन्त्र की प्रवृत्ति तो होगी ही, चूकि एक वस्त्र के उत्तरीय अर्धभाग का उत्तरीयवस्त्र के रूप में धारण करना क्रियान्तर है। अर्थात् दूसरा कार्य है-

उत्तरीयवस्त्राभावे तु पारस्कर गृह्ये-"एकं

चेतपूर्वस्योत्तरवर्गेण प्रच्छादयीत' (पा.गृ.सू. २।६।२२) एकवस्त्रत्वेनोत्तरार्द्धस्योत्तरीयत्वेनोपादानेतु "यशसा मा" उत्तरीयमन्त्रः प्रवर्त्ततएव ।

जातूकर्ण्य नामक आचार्य का कथन है कि उत्तरीयवस्त्र के अभाव में दो अंगुल, तीन अंगुल या चार अंगुल (चौड़े) वस्त्र को (माला की तरह) गले मण्डल बनाकर धारण करना चाहिए-

वस्त्रोत्तरीयाभावे द्वयगुलं त्र्यङ्गुलं चतुरङ्गुलं वा सूत्रैः परिमण्डलं कुर्यादिति ।